धरती माता का थोड़ा-सा ऋण तो चुकाते जाइए जाने से पहले

मानोज रखित

विषयवस्तु

सनातन धर्म की रक्षा हेतु विद्यार्थियों, गृहस्थों एवं सन्यासियों का दायित्व, आज के संदर्भ में **4**

सनातन धर्म की रक्षा हेतु आप क्या कर सकते हैं, आज की परिस्थिति में **9**

क्या होगी आपकी रणनीति, आज की परिस्थितियों में? **12**

गीता का एक सार यह भी है **18**

प्रार्थना

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु में देव शुभकार्येषु सर्वदा।।

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर् देवैस्सदावन्दिता,
सा माम् पातु सरस्वती भगवती निश्शेषजाड्यापहा।।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

समर्पण

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैवा बुध्यात्मना वा प्रकृते स्वभावात।
करोमि यद् यद् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि।।

मानोज रखित
maanojrakhit@gmail.com
http://www.maanojrakhit.com
http://www.scribd.com/maanojrakhit

यदि आप जन-जागरण का संकल्प लेकर इस पुस्तिका को बँटवाना चाहें तो निःसंकोच इसकी प्रतियाँ करवा लें अथवा छपवा लें पर यह ध्यान अवश्य रखें कि कोई परिवर्तन करना आवश्यक जान पड़े तो कृपया मेरी अग्रिम अनुमति लिखित रूप में अवश्य ले लें।

सनातन धर्म की रक्षा हेतु विद्यार्थियों , गृहस्थों एवं सन्यासियों का दायित्व, आज के संदर्भ में

बहुधा आपसे कहा जाता है कि "अपने अंदर की" आसुरिक प्रवृत्तियों को नष्ट करो। ये सभी ज्ञानी गुणी जन यह कहना भूल जाते हैं कि हमें "अपने चारों ओर की" आसुरिक शक्तियों को भी नष्ट करना चाहिए।

परिणाम यह होता है कि जिनमें "धार्मिक" प्रवृत्तियों की अधिकता होती है, वे अपने अंदर की बाकी अधार्मिक प्रवृत्तियों को नष्ट करने में जुट जाते हैं। दूसरी तरफ, जिनमें "अधार्मिक" प्रवृत्तियों की अधिकता होती है, वे इस परामर्श को ठुकरा कर अपने अंदर की रही- सही धार्मिक प्रवृत्तियों को नष्ट करने में जुट जाते हैं।

2. इस प्रकार से, वे व्यक्ति जिनमें धार्मिक प्रवृत्तियों की अधिकता रही है, वे "और भी अधिक धार्मिक" बनते जाते है। दूसरी तरफ , जिनमें अधार्मिक प्रवृत्तियों की अधिकता रही है , वे "और भी अधिक अधार्मिक" बनते जाते है। अन्त में अधर्म इतना बढ़ जाता है कि वह "धर्म पर हावी" हो जाता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि धार्मिक व्यक्तियों को अपने अंदर की धार्मिक प्रवृत्तियों को बढ़ाने की एवं अधार्मिक प्रवृत्तियों को घटाने की चेष्टा करनी चाहिए। पर यह भी कम महत्वपूर्ण नहीं कि उन्हें अपने चारों ओर की अधार्मिक आसुरिक शक्तियों को नष्ट करने की चेष्टा में भी जुटे रहना चाहिए।

वास्तव में यह अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि जब इसे अनदेखा किया जाता है एवं हमारी दृष्टि "अपने अंदर की ओर केन्द्रित होती " है, तब हमारे चारों ओर की अधार्मिक शक्तियाँ "इतनी बढ़ जाती हैं " कि वे सारे वातावरण में व्याप्त हो जाती हैं।

और ऐसा कोई भी नहीं, मैं फिर से कहता हूँ कि ऐसा कोई भी[1] नहीं, जो पूर्णतया अप्रभावित रहे, अपने चारों ओर की अधार्मिक प्रवृत्तियों से , यदि वे इस वातावरण के अभिन्न[2] अंग बने रहना चाहते हैं।

3. आज हम उसी स्थिति में आ पहुँचे हैं जहाँ हमारे चारों ओर की अधार्मिक शक्तियाँ इतनी बढ़ गई हैं कि वे सारे वातावरण में व्याप्त हो चुकी हैं। इस कारण , आज की स्थिति में , यह वातावरण हमारी "व्यक्तिगत आंतरिक" आवश्यकताओं से अधिक महत्व रखती है।

हमें पहले अपने चारों ओर के वातावरण को स्वच्छ करने में अपनी शक्तियों को केन्द्रित करना चाहिए। हमारे टीवी गुरु एवं अनेक अन्य अध्यात्म-प्रचारक बहुधा इसके विपरीत उपदेश देते हैं।

इस प्रकार से वे कुछ लोगों में अच्छाइयों को बढ़ाने में सहायक होते हैं पर इससे सम्पूर्ण मानवता की सहायता नहीं होती। जैसे- जैसे इन लोगों की संख्या बढ़ती जाती है, मानवता दो गुटों में बँट जाती है।

---

[1] यहाँ मैं उनकी बात नहीं कर रहा हूँ जो हिमालय की गुफ़ाओं में जा कर शरण लेतेहैं - अपने-आपको उन प्रभावों से पूरी तरह बचाने के लिए।

[2] यहाँ भी मैं उनकी बात नहीं कर रहा हूँ जो हिमालय की गुफ़ाओं में जा कर शरण लेते हैं - अपने-आपको उन प्रभावों से पूरी तरह बचाने के लिए।

4. वे थोड़े[3] से लोग जो अंतर्मुखी बन कर आंतरिक रूप से अधिक विकसित हो जाते हैं , वे सब अपने चारों ओर के वातावरण के प्रति "उदासीन" हो जाते हैं।

ढेर सारे लोग जिनमें अधार्मिक प्रवृत्तियों की अधिकता[4] होती है, वे सभी एक जुट बने रहते हैं।

दूसरे वे लोग जिनमें धार्मिक प्रवृत्तियों की अधिकता होती है , वे सभी अपने चारों ओर के वातावरण के प्रति उदासीन होकर अपने- आपको अपने-अपने अंदर "अलग-अलग" समेटे रखते हैं।

इस प्रकार अधार्मिक शक्तियाँ "बिना किसी प्रतिरोध " के धीरे-धीरे आगे बढ़ती जाती हैं।

5. प्रत्येक विद्यार्थी एवं गृहस्थ का पहला दायित्व हिंदू समाज के प्रति है - जिसका वे अंग हैं। अतः उन्हें अपने उपलब्ध साधनों को अपने चारों ओर के बाहरी वातावरण[5] को स्वच्छ बनाने में लगाना चाहिए। और जब यह हो जाये तभी अपने-आपको अंदर की ओर समेटना चाहिए।

6. सन्यासियों का लक्ष्य ही होता है अपने-आपको ईश्वर की ओर केन्द्रित करना, और इसीलिए, उन्होंने यह संसार छोड़ा। पर आज की स्थिति में उनका दायित्व अपने प्रति कम एवं समाज के प्रति अधिक बनता है।

---

[3] आप सोचेंगे कि ऐसे लोग तो लाखों में हैं और उन्हें थोड़े से नहीं कहाजा सकता। मान लीजिए वे 10 लाख हैं। विश्व की जनसंख्या कोई 6.5 बिलियन आँकी जाती है। अर्थात, ऐसे व्यक्तियों की संख्या 0.01 प्रतिशत से भी कम हुई।

[4] उदाहरण के लिए लीजिए कौरव पक्ष को, जो आपका इतिहास है, और न भूलें कि, जो इतिहास से कुछ नहीं सीखते उनके लिए इतिहास अपने आपको दोहराया करता है।

[5] यहाँ मैं रास्तों में पड़े गंदगी की बात नहीं कर रहा हूँ आशा है आप समझते होंगे

इसे कुछ इस ढंग से सोच कर देखें - सन्यासी को भी भोजन, वस्त्र एवं छत की आवश्यकता होती है। आज हिंदू समाज उनकी इस आवश्यकता को पूरी करता है।

कल यदि हिंदू समाज अक्षुण्ण न रहा तो कौन[6] उनकी इन आवश्यकताओं पर अपना धन लुटायेगा ?

हाँ वो देंगे, पर तभी जब ये सन्यासी अपना धर्म परिवर्तन कर लेंगे।

7. वर्णाश्रम व्यवस्था में ब्राह्मण , समाज का शिक्षक एवं दिग्दर्शक , हुआ करता था। वह समाज में रहकर , समाज की आवश्यकताओं को भली-भाँति समझता था। इस कारण वह समाज को सही शिक्षा एवं सही दिशा दे पाता था। द्रोणाचार्य जैसा गरीब ब्राह्मण ही अर्जुन जैसे महारथियों को तैयार सकता था।

1835 में ईसाई-अँग्रेज़ी शिक्षा हम पर लादी गई एवं प्राचीन हिंदू शिक्षा पद्धति को योजनाबद्ध रूप से नष्ट कर दिया गया। तब से हिंदू ब्राह्मण संतानें, ईसाई-अँग्रेज़ी शिक्षा पद्धति में, पल कर बड़ी होने लगीं। जैसे-जैसे पीढ़ियाँ बीतती गईं, हमारी ब्राह्मण एवं क्षत्रिय संतानें भी, ईसाई-अँग्रेज़ों के अवगुणों को, आत्मसात करती गईं।

8. वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत संन्यासी आज की तरह समाज के अंदर नहीं रहता था। वह गाँवों एवं शहरों की परिधि के बाहर रहा करता था।

---

[6] आज के वातावरण में पल रहे हमारी संतानों के हृदय में हिंदू संन्यासियों के प्रति कोई विशेष श्रद्धा न रह जायेगी।
आज के वे सन्यासी जो कहते फिरते हैं कि सभी धर्म समान हैं, क्या वे आशा करते हैं कि मुसलमान एवं ईसाई उनके भरनपोषण के लिए अपना धन देंगे?

वह भिक्षा में उतना ही लेता , जो उसके, उस एक दिन के लिए , पर्याप्त होता। वह संचय नहीं करता था। उसका सारा समय भगवद चिंतन में बीतता।

आज का संन्यासी उतना लेता जितना उसे प्राप्त होता। वह आज की आवश्यकता आज पूरी करता , एवं बाकी कल के लिए संचय करता। उसका थोड़ा समय भगवद चिंतन में जाता और बाकी समय आश्रम की व्यवस्था एवं कल की आवश्यकताओं पर खर्च होता।

9. आज के समाज में संन्यासी ने - बीते हुए कल के समाज में ब्राह्मण का - स्थान ले लिया है। आज का गृहस्थ दिग्दर्शन के लिए संन्यासी के पास जाता है। अतः जिस भूमिका को हजारों वर्षों तक ब्राह्मण सफलता पूर्वक पूरा करता आया, आज वही दायित्व संन्यासी के कधों पर आ पड़ा है।

10. ब्राह्मण क्षात्रधर्म के महत्व को समझता था। ब्राह्मण क्षत्रिय को क्षत्रिय की भू मिका निभाने योग्य बनाता था। क्षत्रिय शिरोमणि श्री राम का ब्रह्मचर्याश्रम भी तो, शिक्षा हेतु, ब्राह्मण चूड़ामणि वशिष्ठ एवं विश्वामित्र के आंगन में ही बीता था।

पर संन्यासी की दृष्टि समाज की आवश्यकताओं पर टिकी नहीं होती। वह तो ईश्वर की ओर टकटकी लगाये बैठा हो ता है, अपने मोक्ष के लिए। वह मोक्ष की बातें बेहतर जानता है और समाज को भी उसी दिशा में प्रेरित करता है।

"मोक्ष के लोभ " में पड़ कर समाज में रहने वाला व्यक्ति , समाज के संरक्षण हेतु विभिन्न आवश्यकताओं के प्रति "उदासीन" होकर, अपने मोक्ष की चिंता में लग जाता है।

संन्यासी, गृहस्थ एवं विद्यार्थी , तीनों भूल जाते हैं कि जब समाज ही बिखर जायेगा, तो उनका "अपना अस्तित्व" कहाँ खो जायेगा?

सनातन धर्म की रक्षा हेतु आप क्या कर सकते हैं, आज की परिस्थिति में

यदि आप इस बात से सहमत हैं कि सनातन धर्म की रक्षा हेतु आपका भी कुछ कर्तव्य बनता है तो मैं आपसे केवल यही प्रार्थना करूँगा कि -

- समान सोच वाले व्यक्तियों का संगठन तैयार करें
- संगठन को छोटी-छोटी टुकड़ियों में बाँटे
- प्रत्येक टुकड़ी के लिए अलग-अलग कार्य क्षेत्र का निर्धारण करें
- आरम्भ करें स्थानीय रूप से - विस्तार करें आँचलिक स्तर पर
- अपनी सोच को, सदा अपने उद्देश्य पर, केन्द्रित रखें।
- हिन्दू आज बिखरा हुआ है , अतः आज की पहली आवश्यकता है संगठन

2. हमारे मंदिर एवं हमारे आश्रम हमारे धर्म की रक्षा हेतु संगठन स्थल बन सकते हैं।

किंतु ध्यान रखें - उन आश्रमों से दूर रहें जो आपको यह बताते हैं कि "सभी धर्म" प्रेम व शांति की सीख देते हैं, क्योंकि यह घोर असत्य है।

हमारे देश में आज के अनेक स्वनामधन्य आश्रम- संगठन इस श्रेणी में आते हैं[7]।

आपके मन में सनातन धर्म की रक्षा हेतु जो भी भाव पनप रहे होते हैं, उन्हें बीज की अवस्था में ही कु चल देने में ये आश्रम बहुत सक्षम होते हैं।

इन्हें छोड़ कर बाकी आश्रमों में, एवं मंदिरों में, आप सत्संग की व्यवस्था कर सकते हैं।

ऐसे सत्संग का मुख्य उद्देश्य हो सत्संगियों में राष्ट्रीयता की भावना को जगाना एवं हिन्दू-एकता की आवश्यकता पर जोर देना।

3. ध्यान रहे इस हिन्दू- एकता का एकमेव लक्ष्य हो आत्मरक्षा , जो सम्भव होगी तभी, जब होगी सनातन धर्म की रक्षा।

आत्मरक्षा का अर्थ यह नहीं कि केवल आपके प्राणों की हो रक्षा। यह शरीर किस काम का , यदि आपकी आत्मा ही सुरक्षित न रही , यदि आपके जीवन मूल्य ही सुरक्षित न रहे , और यदि आपकी संतानें अपनी जड़ों से ही कट जायें।

4. कृपया बौद्धिक विलासिता में समय न गवाँयें। अंतहीन विवादों में न पड़ें कि हिंदू धर्म में क्या अच्छा है और क्या बुरा। ऐसे विवाद उन लोगों को करते रहने दीजिए, जो हैं तो वास्तव में अकर्मण्य, पर अपने-आप को इस भुलावे में रखना चाहते हैं, कि वे कर रहे हैं बड़ा कर्म।

---

[7] विशेष कर वे जिन्होंने अपने पाँव विदेशों में भी फैला रखे हैं यद्यपि अपवाद आपको हर जगह मिलेंगे, अतः अपवादों को लेकर इस बहस में न पड़ें कि उनमें से कौन ऐसेनहीं हैं

इंटर्नेट पर, उन परिचर्चाओं में, लिप्त न हों, जिनका मुख्य उद्देश्य होता है, अपने अंदर की भड़ास निकालने का। ये लोग किसी सृजनात्मक कार्य में भाग नहीं ले पाते हैं , यह देख कर कि उस कार्य का फल बहुत देर से मिलेगा।

भाग न लें , ऐसे किसी वाद- विवाद में , किसी भी मंच पर , जब तक उसका एक मात्र उद्देश्य , हिंदू-विरोधी शक्तियों को , समुचित उत्तर देने का न हो। सनातन धर्म की रक्षा हेतु कर्म करें - अपने अहं की परितुष्टि के लिए वाद-विवाद न करें।

सभी प्रकार के हिंदू-विरोधी प्रचारों पर नज़र रखें। ऐसे प्रचारों का डट कर विरोध करें। उन्हें इस बात का एहसास दिलायें कि - यदि वे हिंदू धर्म के विषय में गंदी बातें कहते हैं , या गंदे काम करते हैं - तो आप में भी दृढ़ता है, एकता है, और आप उनके सामने , एक दीवार की भाँ ति खड़े होने के लिए, तैयार भी हैं।

अपना लक्ष्य सहज एवं स्पष्ट रखें - सनातन धर्म की रक्षा, यही हो लक्ष्य हमारा।

5. आपकी चेष्टायें सबको दिखनी चाहिए - वे चेष्टायें ढकी छुपी न हों। आपका नैतिक बल सबको दृष्टि गोचर हो।

छोटी और बड़ी टुकड़ियों में एकत्र होकर प्रदर्शन करें - पर शांति पूर्वक - विशेषकर महत्वपूर्ण स्थानों पर - उदाहरण के लिए - प्रमुख मीडिया केन्द्रों के सामने, राजनैतिक केन्द्रों के सामने, हिन्दूधर्म-विरोधी संस्थाओं के सामने।

6. ध्यान रखें कि छात्र- छात्राओं की सम्मिलित शक्ति अपार होती है , उनकी अप्रयुक्त उर्जा को दिशा देने की चेष्टा करें।

छात्रों की तुलना में , छात्रायें धर्म की बातें अनेक सहजता से समझेंगी। और यदि वे चाहेंगी तो छात्र भी उनका अनुसरण करेंगे।

7. आने वाले समय के साथ, आपकी कार्यप्रणाली भी बदलेगी।

समय से पहले, लम्बी छलांग न लें, अन्यथा आप अपनी चेष्टा को अंजाम न दे सकेंगे।

क्या होगी आपकी रणनीति , आज की परिस्थितियों में?

कृपया उन पर अपना समय एवं अपनी ऊर्जा नष्ट न करें जो या तो आपकी कार्य प्रणाली पर आस्था नहीं रखते अथवा जो सनातन धर्म के विरोधी या निंदक हैं।

यह वह समय नहीं है जब कि आपको अन्यों पर "वैचारिक" विजय प्राप्त करनी है। यह वह समय भी नहीं कि आप उन्हें , जो आपके विचारों से सहमत नहीं हैं, अपनी सोच में ढालने की चेष्टा करें [8]। आप अभी अपने सैन्य-संचालन के "आरम्भिक" पड़ाव पर हैं।

2. आप पहले उन लोगों पर ध्यान दें जो बाड़े के करीब तो बैठे हैं , पर अभी तक बाड़े के उस ओर ही बैठे हैं।

[8] जब तक आपमें दृढ़ विश्वास न हो , जब तक विषय का वृहद ज्ञान एवं समस्या की गहरी समझ न हो , जब तक बहस को एक निष्कर्ष तक पहुँचाने की योग्यता एवं समुचित धैर्य न हो, तब तक मत परिवर्तन कराने के इस महत्वपूर्ण दायित्व को योग्य व्यक्तियों के हाथ में ही छोड़ दें

ये वे व्यक्ति हैं जिनमें या तो दृढ़ विश्वास नहीं है या फिर वह सत्साहस नहीं है कि वे उस बाड़े को लाँघ कर इस ओर आ जायें।

उन्हें केवल थोड़ी सी सहायता चाहिए। इसलिए आप पहले उनकी ओर हाथ बढ़ायें। उन्हें अपने अंदर की जड़ता को काट कर, बाड़े को स्वयं लाँघ कर, आपसे आ मिलने दें।

जैसे-जैसे आपके पक्ष में लोगों की संख्या बढ़ती नज़र आयेगी , आप देखेंगे कि अन्य लोग भी अपने-आप आपकी छाँवनी की तरफ़ बढ़ते चले आयेंगे - आपको उन तक पहुँच कर, उन्हें बुलाने की आवश्यकता उतनी न होगी, जितनी शुरु में होती है।

3. पर एक बात को सदा अपने ध्यान में रखें, एवं कभी अपनी सोच से ओझल न होने दें।

उन्हें अपनी तरफ़ केवल दृढ़ विश्वास के साथ ही आने दें। यह उनका "अपना" निर्णय हो। उनकी "अपनी सोच" को ही उन्हें "उनका" रास्ता दिखाने दें। उन्हें यह लगे कि वह रास्ता आपकी तरफ़ ही आता है। उन पर आवश्यकता से अधिक जोर न डालें - ऐसा करेंगे तो आप उन्हें अपने साथ अधिक समय तक बाँधे न रख सकेंगे।

4. इस बात का पूरा ध्यान रखें कि यदि आप सनातन धर्म की रक्षा करना चाहते हैं तो आपको उन्हीं रास्तों पर चलना होगा जिनकी शिक्षा सनातन धर्म देता है।

आप अन्य धर्मों की अपनायी हुई राहें अपने लिए नहीं चुन सकते हैं - केवल इस आधार पर कि वे आज की परिस्थिति में शीघ्र फलदायी होती दिखती हैं।

हाँ, वे राहें अवश्य ही शीघ्र फल देती हैं पर वे फल भी कम समय तक ही आकर्षक बने रहते हैं। उन धर्मों का इस धरती पर आविर्भाव हुए बहुत समय नहीं बीता है, एवं उनका अंत भी बहुत दूर[9] (8) नहीं है। सनातन धर्म सनातन (अनादि काल से) रहा है और वह सनातन (अनादि काल तक) ही रहेगा।

5. पर उसे सनातन (अनादि काल तक) बनाये रखने के लिए आपको कड़ी मेहनत करनी होगी।

आपके सर का पसीना ढल कर पाँव त क आयेगा। जिसे आप खोते चले गये हैं, उसे फिर से, पहले की भाँति पाने में, आपको उसका मूल्य तो चुकाना ही होगा।

6. जो लोग यह चाहते थे कि आप सनातन धर्म की रक्षा हेतु कुछ न करें उन्होंने जान-बूझ कर आपको "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" का गलत अर्थ सिखाया।

उन्होंने आपको सिखाया कि कर्म करो पर फल की आशा न करो।

वे जानते थे कि आपकी सामान्य बुद्धि इस सिद्धांत के प्रति विद्रोह करेगा। आपकी बुद्धि इसे स्वीकार न करेगी। तब क्या होगा ? आप इस उक्ति के प्रति अपनी आस्था खो बैठेंगे।

7. अन्त में इसका परिणाम क्या होगा?

यह सीधे आपकी आस्थाओं पर कुठाराघात करेगा। आपकी नज़र उस ओर जायेगी जहाँ से इस उक्ति का प्रादुर्भाव हुआ था। आप पायेंगे कि इस

[9] इस संदर्भ में - समय को अपने जीवन काल की अवधि के मापदण्ड पर न आँकें

उक्ति का स्रोत है श्रीमद्भगवद्गीता। यह एहसास आपके मन में गीता के प्रति एक अनास्था की भावना को जन्म देगा।

आपकी सोच इस ओर जायेगी, कि हमारी अवनति का कारण रहा है, यह नकारात्मक उक्ति। आप अपने आपको विश्वास दिला देंगे , कि जिन सभ्यताओं ने इस उक्ति का अनुसरण नहीं किया , उन सभी ने विराट प्रगति की।

आप उन्हें, और उनकी सोच को , आदर के साथ देखने लगेंगे। यह वह स्थिति होगी, जब आप अपनी जड़ों को स्वयं काट कर फेकेंगे।

8. "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" का अर्थ मेरी दृष्टि से समझने की कोशिश करें। पर ध्यान रखें , मेरा उद्देश्य यहाँ गीता की व्याख्या करना नहीं, बल्कि आज के संदर्भ में गीता की प्रासंगिकता को दर्शाना है।

अपने कर्म पर तुम्हारा अधिकार है, पर उसका फल तुम्हारे बस में नहीं। अतः कर्म पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करो। कर्म- फल का अपना महत्व है , पर कर्म-फल को औचित्य से अधिक महत्व न दो , कि तुम्हारी दृष्टि फल पर अधिक एवं कर्म पर कम केन्द्रित हो।

9. तुम्हें अपने कर्म का "फल" मिलेगा अवश्य, पर यह निम्नोक्त कई सम्भावनाओं में से कोई भी एक हो सकता है , जो तुम्हारी बस में पूरी तरह नहीं है -

- इच्छित, अर्थात जैसा तुमने चाहा था
- इच्छा-विरुद्ध, अर्थात जैसा तुमने चाहा था उसके विपरीत
- मिश्रित, अर्थात कुछ जैसा चाहा और कुछ उसके विपरीत

- मिश्रित हुआ तो यह मिश्रण किस अनुपात में होगा यह तुम नहीं जानते

10. जब कर्म करो तो उसके फल को समय की परिधि में कुछ यों न बाँधो कि वह अर्थ-हीन हो कर रह जाये -

- यों न सोचो कि कर्म का इच्छित फल तुम्हें अपने जीवन काल में मिले तभी वह कर्म सार्थक होगा।
- आखिर तुम्हारे जीवन-काल की सीमा क्या है? क्या तुम यह भी जानते हो कि कल तुम जीवित रहोगे या नहीं?
- अतः तुम्हारा कर्म, कर्म के हेतु होना चाहिए , फल को समय के हाथ में छोड़ दो।
- "समय" इतना बलवान होता है कि बड़े- बड़े उसके सामने नत-मस्तक हो जाते हैं, तो फिर तुम्हारी क्या औकात है?

11. मैं प्रवचन देने में विश्वास नहीं रखता हूँ। जो मुझसे बन पड़े, उसे मैं करना, अधिक पसंद करता हूँ।

मैं इस कार्य में लगा हुआ हूँ , इस बात की परवाह किये बिना , कि मेरी चेष्टायें, आज के मापदण्ड पर, सफल कहलायी जायेंगी, या नहीं।

मैं जानता हूँ कि मैं अपना कर्म तो कर सकता हूँ पर उसका "फल" और "समय" मेरे "नियन्त्रण" में नहीं है।

मैं इस कार्य को करता जा रहा हूँ , क्योंकि मैं जानता हूँ , कि यह एक हारी हुई बाजी नहीं है। फल मिलेगा - उचित समय आने पर।

उस समय की ओर, मुझे टकटकी लगाये, बैठे नहीं रहना है। मुझे अपना कार्य करते जाना है, और "समय" को अपना।

12. कुछ भी तो रातों-रात नहीं हो जाता।

- हम इस दयनीय स्थिति तक नहीं पहुँचा दिए गए केवल कुछ ही महीनों में, या कुछ ही वर्षों में।
- उन्हें भी सदियाँ लगीं, सनातन धर्म के इस इमारत को, खोखला करने में।
- एक इमारत को ढहाने में बहुत कम समय लगता है , उसी इमारत को खड़ा करने की तुलना में।
- अब तो उस ढहाने की प्रक्रिया ने भी गति पा ली है। उस गतिमान अवस्था पर ब्रेक लगाने में थोड़ा समय तो लगेगा ही।
- उसके पश्चात, उस प्रक्रिया की दिशा को भी बदलना पड़ेगा।

और उसके बाद ही, नव-निर्माण का कार्य आरम्भ किया जा सकेगा।

जिन्होंने उस इमारत को ढहाया उन्हें भी काफ़ी काम करना पड़ा एवं प्रतीक्षा करनी पड़ी।

- उन्हें भी तो बहुत समय लगा था।
- वही बात लागू होगी हम पर भी , जो उस इमारत को पुनः खड़ा करना चाहेंगे।
- हमें भी बहुत काम करना होगा, एवं काफी प्रतीक्षा करनी होगी।

13. आने वाले समय के साथ यह रणनीति भी बदलेगी।

एक-एक कदम, एक समय पर, लेना है हमें।

मैं तो केवल बीज बोता चला जा रहा हूँ

सम्भव है कि मैं अपनी चेष्टाओं का परिणाम अपनी आँखों से देख सकूँ , अपने जीवनकाल में ही।

यह भी संभव है कि मुझे यह सौभाग्य प्राप्त ही न हो।

पर क्या फर्क पड़ता है इससे?

जब परिस्थितियाँ हमारे प्रतिकूल हों तो हमें अधिकाधिक श्रम करना ही पड़ता है।

और उस श्रम का परिणाम हमें ब्रह्माण्ड पर छोड़ देना होता है क्योंकि परिणाम हमारे अधिकार क्षेत्र में नहीं होता।

यही तो समझाना चाहा था भगवान श्रीकृष्ण ने, अर्जुन को।

गीता का एक सार यह भी है

अर्जुन ने तो कह दिया था , कि मैं अग्नि-समाधि ले लूँगा, यदि कल के सूर्यास्त से पहले जयद्रथ का, वध न कर दूँ।

उसने एड़ी-चोटी का जोर भी लगा दिया था , पर सूर्य तो ढलता नजर आया, और जयद्रथ अभी भी जिन्दा ही था।

अर्जुन को तो इसी बात की सीख दे नी थी कि जयद्रथ वध की चेष्टा तो तुम्हारे अधिकार क्षेत्र में था, पर इसके परिणाम को सूर्यास्त के दायरे में बाँधना तो, कभी भी तुम्हारे अधिकार क्षेत्र में, था ही नहीं।

तब फिर तुमने अग्नि-समाधि का प्रण कैसे ले लिया?

किसने दिया था यह अधिकार तुम्हें , कि अपना क र्म पूरा किये बिना , तुम कर सको, प्राण त्याग अपना?

कुरुक्षेत्र की भूमि पर जब तुम आये , तो एक दायित्व लेकर अपने काँधों पर - वह था अधर्म का समूल नाश, एवं धर्म की पुर्नस्थापना।

अपना दायित्व पूरा किये बिना , कैसे सोचा तुमने, कि तुम ले सकते हो प्राण अपना, केवल अपनी इच्छा से?